पराभवस्तावदबोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम्।
यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः।।
एवं मनः कर्मवशं प्रयुंक्ते अविद्ययाऽऽत्मन्युपधीयमाने।
प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत्।।

'साधारण लोग इन्द्रियतृप्ति के लिये उन्मत्त हो रहे हैं। वे नहीं जानते कि यह क्लेशमयी देह उनके पूर्वकृत सकाम कर्मों का फल है। नश्वर होने के साथ ही यह निरन्तर नाना प्रकार से कष्ट देती है। अतः इन्द्रियतृप्ति के लिए कर्म करना श्रेयस्कर नहीं है। सकाम कर्म की तत्त्वजिज्ञासा न करने वाले को जीवन में परास्त समझा जाता है, क्योंकि जब तक जीव इन्द्रियतृप्ति में आसक्त रहता है, तब तक उसे बारम्बार देहान्तर की प्राप्ति होती ही रहती है। मनके सकाम कर्मों में आसक्त और अज्ञानग्रस्त होने पर भी श्रीवासुदेव की भक्ति में प्रीतिभाव का वर्धन करता ही रहे, तभी शरीरबन्धन से मुक्ति सुलभ होगी।'' (श्रीमद्भागवत ५.५.४-६)

अतः मुक्ति के लिये केवल ज्ञान (देह से अतीत आत्मतत्त्व का बोध) पर्याप्त नहीं है। जीवात्मा के स्वरूप में कर्म करना अनिवार्य है, अन्यथा भवबन्धन से मुक्ति नहीं हो सकती। परन्तु कृष्णभावनाभावित कर्म सकाम कर्म के समान नहीं होता। ज्ञानमय कर्म तो वस्तुतः यथार्थ ज्ञान में प्रगति को दृढ़ करता है। कृष्णभावना के अभाव में सकाम कर्मों का संन्यास मात्र बद्धजीव के हृदय को यथार्थ रूप में स्वच्छ नहीं कर पाता और जब तक हृदयमार्जन नहीं हो जाता, तब तक सकाम कर्म बनते ही रहते हैं। परन्तु कृष्णभावनाभावित कर्म साधक को कर्मबन्धन से स्वतः मुक्त कर देता है, जिससे उसे फिर प्राकृत स्तर पर नहीं उतरना पड़ता। अतएव कृष्णभावनाभावित कर्म संन्यास से सदा उत्तम है, क्योंकि संन्यास में भी पतन का भय नित्य बना रहता हैं। कृष्णभावनाशून्य वैराग्य अपूर्ण है, जैसा श्रील रूप गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में प्रमाणित किया है —

प्रापंचिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते।।

'मुमुक्षुओं का श्रीभगवान् से सम्बन्धित वस्तुओं को प्रापञ्चिक समझकर त्याग देना अपूर्ण वैराग्य कहा जाता है।' वैराग्य पूर्णता को तब प्राप्त होता है जब वह इस ज्ञान से युक्त हो कि जो कुछ भी विद्यमान वस्तु है, वह श्रीभगवान् की ही है, अतः जीव को किसी भी वस्तु पर अधिकार का भाव नहीं रखना चाहिये। यह वस्तुतः समझ ले कि अपना कुछ भी नहीं है। इस निष्किञ्चन अवस्था में त्याग का प्रश्न ही कहाँ उठता है? जो यह जानता है कि सब कुछ श्रीकृष्ण की सम्पत्ति है, वह नित्य वैराग्यवान् है। सब कुछ श्रीकृष्ण का है, इसलिए सब वस्तुओं को श्रीकृष्णसेवा में ही लगाना चाहिए। यह शुद्ध कृष्णभावनाभावित कर्म मायावादी संन्यासियों के उत्कट से उत्कट कृत्रिम वैराग्य से कहीं उत्तम है।